REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 10 | JULY - 2024

ब्राह्मण धर्म में अनुष्ठान का स्वरुप एवं महत्व : एक अध्ययन

डॉ. अजीत सिंह
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

ब्राह्मण धर्म का परिचय

ब्राह्मण धर्म को प्राचीन काल से ही सनातन धर्म का स्वरूप माना जाता है। इसे भागवत धर्म, वैष्णव धर्म शैव एवं शाक्त धर्मों की संगम स्थली का केन्द्र माना गया। इसे वैदिक धर्म भी कहा जाता है परन्तु इससे इस धर्म का दायरा कम हो जाता है, अतः वेदों की रचनाकाल से इस धर्म को वैदिक धर्म कहा गया। यास्क मुनि ने तो ब्राह्मण शब्द की व्याख्या करते हुए कहा, कि 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः' अर्थात् जो ब्रह्म को जानता हो उसका साक्षातकार करता हो जो अन्तिम सत्य से परिचित हो वही ब्राह्मण है और इनके द्वारा जब अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी, उसमें आस्था रखने वाले लोगों ने जिस धर्म को मान्य किया, उसे ही ब्राह्मण धर्म कहा गया।

यह धर्म 'वसुधैव कुटुंबकम' पर आधारित है। इसीलिए संसार में इसे ही धर्म की संज्ञा मिली है, अन्य सभी धर्मों पंथों के रूप में पूजा जाता है। इसमें जहाँ एक ओर एकेश्वरवाद जिसमें ध्यान, तप, साधना तथा योग को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताया गया, वहीं दूसरी ओर बहुदेववाद जिसमें विभिन्न प्रकार के जप, पूजा, हवन, यज्ञ और संस्कारों द्वारा परमात्मा को पाने का माध्यम बताया गया। इस तरह यह धर्म निराकार ब्रह्म के साथ–साथ परमात्मा के सगुण एवं सकार स्वरूप को भी वकालत करता है।

इसमें कर्मवाद के साथ पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को भी महत्व प्रदान किया गया। अतः यह धर्म व्यक्तित्व स्वतंत्रता, अध्यात्मिक उन्नति एवं आत्मिक विकास पर आधारित है। जिसका मुख्य उद्देश्य मानव मात्र को चार पुरूषार्थ, चार आश्रम तथा सोलह संस्कारों के साथ पूजा, उपवास, व्रत आदि के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर करना, या परमात्मा से साक्षातकार करवाना हैं।

अनुष्ठान का परिचय

अनुष्ठान वह क्रिया है जिससे मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। यह प्रत्येक मानव जीवन का अनिवार्य कर्म है, जिससे मानव जहाँ एक ओर अध्यात्मिक उन्नति की तरफ अग्रसर होता है, वही दूसरी ओर एक श्रेष्ठ सामाजिक जीवन का निर्वाह करता है। प्रायः मनुष्य द्वारा अपने वैदिक जीवन को सुमार्गी बनाने, नैतिक नियम बद्ध बनाने के लिए अनुष्ठान जैसी अध्यात्मिक क्रियाएं अति आवश्यक हैं, जिससे वह इस लोक एवं परलोक के मार्ग को सवांरता है।

वास्तव में अनुष्ठानों में जहां एक ओर हवन, हवि तथा बलि जैसे कर्मकाण्डों का प्रयोग होता है, वहीं ध्यान तप साधना जैसे आत्मनुष्ठान का उल्लेख मिलता है। तात्पर्य है, कि अनुष्ठान केवल बाहरी रूप में ही नही होता है, जिसमें एक वेदी पर विभिन्न सामग्रियों से आहूति देना है, वह तो शरीर के अन्दर उपस्थित सभी दोषों को हवि बनाकर आत्मा को कुण्ड बनाकर साधना रूपी माध्यम से किया जाता है। अतः अनुष्ठान ईश्वर प्राप्ति का वह मार्ग है, जिस पर समाज का साधारण जन भी चलकर परमात्मा तक पहुँच सकता है। इस तरह

अनुष्ठान अध्यात्म के मार्ग कि वह क्रिया है, जो मानव स्वरूप को सुसंस्कारिक करती है। अतः ब्राह्मण में अनुष्ठानों का विश्लेषण निम्न रूप में दिया गया है।

ब्राह्मण धर्म में अनुष्ठान का स्वरूप एवं महत्व

ब्राह्मण धर्म सनातन धर्म का एक अंग है, जिसकी प्राचीनता अत्यधिक पुरानी है। काल के आरम्भ में इसी धर्म के ही साक्ष्य पाये गये हैं। प्रारम्भ में इस धर्म को मानने वाले लोगों ने अपने धार्मिक जीवन के अन्तर्गत जिसमें कुछ पाया उसमें श्रद्धा बना ली तथा उसे मानव रूप में मानकर पूजने लगे, इसके लिए उन्होंने यज्ञ, याग, हवन, हवि, बलि जैसे क्रियाओं के माध्यम से ईश्वर को प्रसन्न करने का मार्ग प्रशस्त किया। इसे वे शुम मुहूर्त स्वच्छ स्थानों पर तथा शुभ नक्षत्रों में साधारण रूप में करते थे, यह क्रिया प्रतिदिन होती थी, लेकिन जब मानव को एकेश्वरवाद का भान हुआ, तो वह ध्यान एवं साधना के माध्यम से शरीर को सहारा बनाकर तप के द्वारा परमात्मा को प्रसन्न करने का मार्ग खोजा, उसे भी अनुष्ठान का एक रूप माना गया। इस तरह यदि यह कहा जाए कि प्रारम्भ में समाज वैदिक एवं श्रमण रूपी दो धाराओं में बंटा था, जिसमें प्रथम धारा में यज्ञ–याग तथा अन्य कर्मकाण्ड की प्रधानता थी, कालान्तर में दोनों धाराओं ने एक दूसरें के पूजा एवं साधना विधानों को अपनाया जो वर्तमान के अध्यात्मिक मंच पर दृष्टिगत होता है। जहाँ तक ब्राह्मण अनुष्ठानों के स्वरूप की बात की जाए तो स्पष्ट होता है कि इसमें यज्ञ, याग हवन, बलि, आश्रम व्यवस्था, तथा वैदिक देवों की आराधना के साथ तप संस्कार एवं कुछ वर्तमान में उपलब्ध पूजा–विधानों का उल्लेख संक्षिप्त रूप में किया गया है। जो निम्न रूपों प्रस्तुत है।

1. यज्ञ–यह ब्राह्मण कर्मकाण्डों के स्वरूप का सबसे श्रेष्ठतम विधान माना जाता है। इसे वैदिक धर्म का मेरुदण्ड भी कहा गया है। यह वैदिक उपादेयता का परिचायक है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया, कि–

'यज्ञो वे श्रेष्ठतमं कर्मः।[1]

अर्थात् यज्ञ ही सभी कर्मों का आधार है, वही श्रेष्ठतम कर्म है। इसी तरह अथर्ववेद में कहा गया, कि–

'यज्ञों विश्वस्य भुवनस्य नाभि।[2]

अर्थात् यज्ञ समस्त भुवन का केन्द्र है, जिसके चारों ओर वैदिक धर्म परिक्रमा करता है।
ऋग्वेद में कहा गया, कि 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा'[3] देवताओं द्वारा सम्पादित यज्ञ समस्त जगत के कल्याण के लिए जन्मा जिसके माध्यम से न केवल मानव बल्कि देवता भी अपनी आस्था प्रकट करते है। श्रीमद्भगवतगीता में बताया गया, कि–

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोअस्त्विष्टकामधुक।
देवान् भवयतानेन ते देवा भावयन्तु वः
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।[4]

अर्थात्– प्रजापति ने इस सृष्टि की रचना के साथ मानव को बनाकर यह कहा, कि यज्ञ से तुम्हारी मनोभिलाओं की पूर्ति होगी, तुम इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को संतुष्ट करो, इससे देवता तुम्हें पुष्प एवं फल प्रदान करे, तथा तुम कल्याण के पद को प्राप्त करो, इसी प्रकार आरण्यकों में यज्ञ की व्याख्या करते हुए शरीर को ईधन, आत्मा को यजमान, तथा बुरे–कर्मों को हवि, बताया गया और इस तरह अध्यात्मिक साधना को भी यज्ञ की संज्ञा दी गयी। 'श्रीमद्भगवतगीता' में कृष्ण ने यज्ञ को कर्मों के बन्धन से मुक्ति का मार्ग बताया।[5] उससे दिव्यलोक की प्राप्ति होती है।इस तरह यज्ञ एक ऐसी नौका है जिस पर बैठकर मानव संसार के भव सागर से पार होता है।

शाब्दिक अर्थ में यज्ञ याज्ञ धातु से बना है, तात्पर्य है कि, देवपूजा, संगीति करण दान तथा सत्संग के रूप में परिभाषित किया गया है।

यज्ञ के प्रकार– प्रायः यज्ञ को मूल रूप में दो भागों में बांटा गया एक नित्य यज्ञ जो प्रतिदिन साधकों के द्वारा किए जाते हैं, और दूसरा नैमित्ययज्ञ इसको बड़े–बड़े राजाओं श्रेष्ठिन तथा महात्माओं, के द्वारा किया जाता है, इसमें समय, धन तथा व्यक्तियों की अत्यधिक संख्या होती है। जबकि नित्य यज्ञ को साधारण रूप में सम्पन्न किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में यज्ञों का स्वरूप मात्र हवन एवं संमिधा, बलिकर्म तक सीमित था परन्तु कालान्तर में इसने विस्तृत आकार धारण कर लिया।

नित्ययज्ञ–इस प्रकार के यज्ञों का उल्लेख ज्यादातर शतपथब्राह्मण में मिलता है। ये मात्र पांच प्रकार के होते है जिसका विवरण निम्न रूपों में दिया गया है।

1. देवयज्ञ– देवों को प्रतिदिन अग्नि होम आदि करना ही देवयज्ञ कहलाता है। इसमें अग्नि, इन्द्र तथा सूर्य देवताओं को आहूतियां दी जाती है।

2. ब्रह्मयज्ञ–इसे ऋषियज्ञ भी कहा गया है। वैदिक ग्रन्थों का स्वध्यापन करना, तथा गुरू के प्रति श्रद्धा रखना ब्रह्मयज्ञ कहलाता है।

3. पित्रयज्ञ–पितरों का श्राद्ध करना, जल देना या भोग, तर्पण करना इस यज्ञ के अन्तर्गत आता है।

4. नृयज्ञ–इसे अतिथि यज्ञ कहा गया, अतिथियों की सेवा करना एवं उन्हें भोजन कराना, दान देना आदि नृयज्ञ कहलाता है।

5. **भूतयज्ञ–**संसार के समस्त प्राणियों को आहार देना, और उनकी रक्षा करना भूतयज्ञ कहलाता है। इस तरह इन यज्ञों को मानव प्रतिदिन अपने दैनिक कर्मों की भांति करता था।[6]

नैमित्ययज्ञ–इस प्रकार के यज्ञों में समय के साथ–साथ धन एवं व्यक्तियों की संख्या की भी मात्रा ज्यादा लगती है। अतः नैमित्य यज्ञ को दो भागों बांटा गया है।

1. ग्रहक्रमाणि यज्ञ 2. श्रौत यज्ञयहाँ ग्रहक्रमाणि यज्ञ के कुल सात भाग बताएं गये है। जबकि श्रौत यज्ञ के दो भाग हविरियज्ञ तथा सोमयज्ञ, इनकों प्रायः सात–सात भांगों में विभाजित किया है। जिसको संक्षिप्त रूप में परिभाषित किया है।

ग्रहक्रमाणि यज्ञ– इसको कुल सात भागों में वितरित किया गया है। जो निम्न है।

1. अष्टकाश्राद्ध–यह अगहन, पौष, माघ, मांस की कृष्ण अष्टमियों में पितरों को तर्पण करने के लिए किया जाता है।

2. पार्षण श्राद्ध–यह पूवजों के निधन की तिथि पर अश्वनि माह के प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पितरपक्ष में किया जाता है।

3. श्रावणी श्राद्ध–यह श्रावण मास की पूर्णिमा को किया जाता है।

4. अग्रहायणी–यह अगहन मास की पूर्णिमा को किया जाता है।

5. चैतिय श्राद्ध–ये चैत्र मास की पूर्णिमा को किया जाता है।

6. शूलगव–यह बसन्त ऋतु में माघशीर्ष की पूर्णिमा को किया जाता है। इसमें पशुपति देवता को हवन किया जाता था।

7. अश्रुयुषी–इसमें इन्द्रायणी तथा अश्वनि कुमारों को घृत, दही तथा मधु से आहूति दी जाती थी, इसे अश्वनि मास की पूर्णिमा अर्थात् शरद पूर्णिमा को किया जाता था।

इस तरह ग्रहक्रमाणि यज्ञों को एक ग्रहस्थ द्वारा पूरा किया जाता था। यह साधारण यज्ञ होता है। श्रौतयज्ञ इसको दो भागों में विभाजित किया गया है। हविरियज्ञ तथा सोमयज्ञ जिसको कई रूपों में विभाजित किया गया है। जो निम्न है।

हविरियज्ञ– इसको सात रूपों में विभाजित किया गया है, जिसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है।

1. अग्न्याधान यज्ञ–इसे यजमान द्वारा चार पुरोहितों की सहायता से दो दिन में सम्पन्न किया जाता था। यह अग्नि के प्रज्वालित अंगारकों को स्थापित करके विभिन्न मन्त्रों के साथ सम्पन्न होता था।[7]

2. अग्निहोत्रायवा– इसको प्रायः प्रातः काल तथा सायंकाल के समय सूर्य एवं प्रजापति को आहूति देकर किया जाता था। छान्दोग्योपनिषद में दूध, दही, घी तथा अन्य द्रव्यों से हवि देकर इस यज्ञ को सम्पन्न करने का विधान है।[8]

3. दर्शपूर्णमास यज्ञ– यह प्रायः अमावस्या एवं पूर्णिमा को इन्द्र एवं अग्नि की आहूति के साथ सम्पन्न किया जाता था।

4. चातुर्मास्य यज्ञ– यह यज्ञ चर्तुमास में सम्पन्न होता था। यह आषाढ़ पूर्णिमा से लेकर कार्तिक पूर्णिमा तक चलता था। इसमें अग्नि, सोम, सविता, पूसन तथा सरस्वती की आहूतियां दी जाती थी।[9]

5. निरूढ़पशुबन्ध– यह अनुष्ठान वर्षा ऋतु में सम्पन्न होता था। इसमें इन्द्र, अग्नि, सूर्य तथा प्रजापति को पशु बलि देकर सम्पन्न किया जाता था। पशुबलि वैदिक मन्त्रों के साथ होती थी।

6. अग्रमण यज्ञ– इसे बसन्त और शरद ऋतु में सम्पन्न किया जाता है, इसमें धावा पृथ्वी, अग्नि, इन्द्र तथा विश्वदेव को यव की आहूति देकर पूर्ण किया जाता था।[10]

7. सौत्रामणी यज्ञ– यह विशेष रूप में इन्द्र को समर्पित है, जो चार दिनों तक चलता था। इसमें यज्ञ वेदी पर हवि के साथ तीन से पांच पशुओं की बलि दी जाती थी। इसमें सुरा की भी आहूति दी जाती थी। इस तरह हविरियज्ञ के सातों सोपानों को बताया गया।[11]

सोम यज्ञ– इसमें चन्द्रमा को आहूति दी जाती थी, इसको भी सात रूपों में विभाजित किया है। जिसको संक्षिप्त प्रकार से परिभाषित किया गया है।

1. अग्निष्टोम– यह पांच दिनों तक चलता था। साम का गान होने से इसे अग्निष्टोम कहा जाता है। द्वादश शास्त्रों का पाठ अनिवार्य है। इसमें सौमिक वेदि के ऊपर प्रधान इष्टियों का अनुष्ठान होता है।[12]

2. उक्थ्य यज्ञ– इनमें कुल पन्द्रह शास्त्रों से यज्ञ करवाया जाता परन्तु तीन प्रमुख थे, जिससे ज्यादा ऋचाएं बोली जाती थी।

3. षोड़शी यज्ञ– यह कोई स्वतन्त्र यज्ञ नही था, इसे उक्थ्य यज्ञ के समान ही माना जाता है।[13]

4. बाजपेय यज्ञ– बाज का अर्थ पेय प्रदार्थ अर्थात् इस यज्ञ में सोमरस पिया जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया, कि 'बाजेअन्त पेयद्रव्यात्मकं यस्मिन् सा बाजपेयः अर्थात् बाजपेय यज्ञ में पेय द्रव्य का महत्व था। इसका प्रमुख उद्देश्य स्वर्ग, समृद्धि, स्वराज्य, पुत्र तथा अन्य कामनाओं की पूर्ति के लिए यह अनुष्ठान होता था। इसमें कुल इक्कीस वेदियां बनती यह एक माह से एक वर्ष तक चलता। इसमें यजमान दान तो दे सकता था परन्तु ले नही सकता था।[14]

5. राजसूय यज्ञ– इसके लिए कहा गया, कि 'सूयते अमिच्यते यज्ञमानोंअस्मिन महाक्रतौं सोअयमभिषेक पुक्कों महाक्रतुः'[15] अर्थात् इस यज्ञ में स्वर्ग एवं स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सम्पन्न होता था, जो केवल राजा द्वारा ही किया जाता था। यह फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को होता था। इसमें राजा के पदाधारी को पुरोहित सत्तरह नदियों के पवित्र जल से स्नान करवाता तथा कुल बारह रत्नियों के आदेश के बाद सुगन्धित इत्रों का लेप एवं रेशमी वस्त्रों को धारण करके राज्याभिषेक किया जाता था। यह इक्कीस माह तक चलता है इसमें पशु बलि भी होती थी।

6. अश्वमेघ यज्ञ– यह प्रमुख सोमयज्ञ माना गया। इसमें राजा अपनी समृद्धि को दर्शाने के लिए एक यज्ञ करता जो फाल्गुन शुक्ल अष्टमी नवमी को प्रारम्भ होकर लगभग तेरह या चौदह माह में पूर्ण होता। इसमें एक अश्व को ईशान कोंण की ओर छोड़कर उसके पीछे सेना भेजी जाती जिसमें चालीस सैनिक होते थे, राजा–रानी के साथ घोड़े का भी श्रृंगार किया जाता तथा वापस आने पर उसकी बलि दी जाती इसके साथ कुत्ते तथा कुछ अन्य पशुओं की भी बलि दी जाती थी।[16] इस तरह यह यज्ञ पूर्ण होता था।

7. पुरूषमेघ यज्ञ– इसमें पुरुष अपना सब कुछ दान करता और संन्यास लेकर वानप्रस्थ धारण करता। यह चालीस दिनों तक तेइस दीक्षाएं तथा बारह उपसद के साथ चलता, इसमें लगभग एक सौ चौरासी पुरुषों को बाधकर छोड़ दिया जाता तथा किसी का वध नही किया जाता था। इस यज्ञ में यजमान पुरोहित को या समाज में सारी सम्पत्ति दान करके स्वयं वनप्रास्थी हो जाता है।[17] इस तरह कुल यज्ञों का वर्णन किया गया। इसके अतिरिक्त अतिरात्र, सर्वमेघ, यत्रयाज्ञ, आप्तोयार्म और गोसव जैसे[18] यज्ञों का विवरण प्रायः ब्राह्मण ग्रन्थों में सविस्तार से मिलता है। अतः यज्ञ रूपी अनुष्ठान ब्राह्मण धर्म का आधार थे, जो प्रारम्भिक दौर में अध्यात्मिक

साधना का प्रमुख अंग थे। तत्पश्चात वैदिक आर्यों ने अनेक देवी देवताओं की भी आराधना प्रारम्भ की जिसका विवरण निम्न है।

वैदिक देवता– प्रायः आर्यों ने जिसमें कुछ पाया उसमें आस्था लगाकर और उसे पूजने लगे उसके लिए हवन यज्ञ आदि कर्मकाण्डों को करना प्रारम्भ किया इनकी संख्या अत्यधिक हैं, जिसका संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है।[19]

पृथ्वी के देवता– इसमें विभिन्न प्रकार की नदियां जिसमें प्रमुख सरस्वती नदी तथा सोम, पृथ्वी, अग्नि तथा कुछ अन्य देवी–देवता जो पृथ्वी के देवता माने जाते थे। ऋग्वेद में सोम के लिए 140 तथा अग्नि के लिए 200 ऋचाओं का प्रयोग किया गया, साथ ही अग्नि को प्रज्वलायमान देवता की संज्ञा दी गई। सोम एक प्रकार के पेय पदार्थ है, जिसकी आराधना समय–समय पर की जाती थी। यज्ञों में इसकी आहुतियां भी दी जाती, सरस्वती की आराधना बसंतोत्सव के समय बड़ी भव्यता के साथ करने का विधान हैं।[20]

आकाश के देवता– इसमें सूर्य, ऊषा, विष्णु, वरुण, अदिति, सवित, चंद्र तथा व्योंमआदि देवता इसके अन्तर्गत आते थे। इनकी आराधना आर्यगण विभिन्न प्रकार की सामग्रियों को हवि बनाकर करते थे। इसमें सूर्य को प्रकाश का देवता वरुण को जल का चंद्रमा को शीतलता का ऊषा साबित और अदिति को भोर की देवियां माना जाता है वैदिक ग्रंथों में इनके लिए अनेक रचनाओं के माध्यम से अनुष्ठान करने की विधि बताई गई है।[21]

अंतरिक्ष के देवता– इसमें इंद्र, रुद्र, वायु, प्रजापति प्रमुख देवता तथा पर्जन्य पूषण आदि गौण देवता माने गए। इंद्र को समय–समय पर सर्वश्रेष्ठ देवता कहा गया। रुद्र को क्रोध का देवता, तथा वायु को जीवन यापन का देवता तथा प्रजापति को रचनाकार माना गया। इनके अनुष्ठान के स्वरूपों विधि को वैदिक ग्रंथों में सविस्तार से बताया गया है। प्रायः यज्ञों के माध्यम से आर्य इनको आहुतियां देते थे।[22]

इस प्रकार प्रमुख वैदिक देवी देवताओं का उल्लेख किया गया, इसमें सर्वश्रेष्ठ देवों में इंद्र, वरुण, अग्नि एवं सोम थे, जो इस समय अत्यधिक पूजनीय थे, इसके अलावा सूर्य, विष्णु,रुद्र तथा प्रजापति भी श्रेष्ठ थे। प्रायः आर्यों ने प्रारम्भ में इनकी आराधना की परंतु कालांतर में इनका स्थान विष्णु, शिव, प्रजापति तथा गणेश ने धारण किया। इन्हीं की मूर्ति को मंदिर तथा चित्रों में दर्शाया जाने लगा। प्रायः ब्राह्मण अनुष्ठानों के स्वरूपों में त्रिऋण का प्रमुख योगदान है इनका उल्लेख निम्न रूपों में किया गया है।

1. देवऋण– देवताओं के प्रति पूजा अनुष्ठान करना ही देव ऋण का स्वरुप है।[23]

2. ऋषि ऋण– गुरुओं के प्रति पूजा एवं श्रद्धा रखना शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन करने से ऋषिऋण से मनुष्य उश्रण होता है।[24]

3. पित्र ऋण– पुत्र को जन्म देना ही पित्र ऋण का रुप है।[25]

इस तरह ऋणों से मुक्त होकर मनुष्य संसार के भवसागर से पार होता है उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य चार आश्रम चार पुरुषार्थ तथा तीन ऋण से मुक्त होना था। ब्राह्मण धर्म में इन सभी को अनुष्ठान की श्रेणी में रखा गया है क्योंकि यह सभी कर्मकाण्ड विधि–विधान पूर्वक होते हैं।

संस्कार– ब्राह्मण धर्म में संस्कार का मूल स्वरुप साधारण मानव को सुसांस्कृतिक बनाकर उसे एक श्रेष्ठ व्यक्ति के रूप में तैयार करना, जिससे वह जीवन के सभी मूल उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। यह जन्म से मृत्यु तक होते हैं। इनकी संख्या विभिन्न मत मतान्तरों के निष्कर्ष रूप में सोलह बताई गई है, जिसका संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है।

1. गर्भाधान– प्रथम बार रज्वल्ला स्त्री के गर्भ में वीर्य को डालना गर्भाधान संस्कार का रुप है मनु[26] एवं याज्ञवल्क्य[27] स्मृतियों में कहा गया कि 'मासिक धर्म के बाद गर्भाधान के लिए सोलह रात्रियां सर्वश्रेष्ठ हैं' जिसमें पवित्र होकर स्त्री अपने पति के पास जाती हैं और सहवास करके गर्भधारण करती थी।

2. पुंसवन– यह संस्कार भ्रूण की सुरक्षा के लिए किया जाता था। ये गर्भ के चौथे माह में होता था। जिससे श्रेष्ठ बलवान पुत्र की प्राप्ति हो, इसमें जलपात्र स्त्री के अंक (गोद) में रखकर उदर से स्पर्श कराते थे, तथा सुपर्णोअसि मंत्र का जाप करते हुए इस अनुष्ठान की पूर्ति करते है।[28]

3. सीमान्तोंनयन– इसे आठवें माह (गर्भधारण के) में प्रजापति की पूजा के साथ सम्पन्न किया जाता था। यह गर्भ को सैतानी शक्तियों से बचाने के कारण होता था। इसमें माता को शाही के काटों से मारा जाता तथा उदम्बर फल का सेवन करवाया जाता इस प्रकार यह अनुष्ठान पूर्ण होता था।

4. जातकर्म– इसे जन्म संस्कार कहते है। यह संस्कार बालक की नाल पिता द्वारा काटने से प्रारम्भ होता है, इस समय मंत्रों के होम करते हुए दही, घृत तथा शहद को मिलाकर बालक को चटाया जाता है, इस तरह विधि पूर्वक इस अनुष्ठान की पूर्ति की जाती है।[29]

नामकरण– यह जन्म के बारहवें दिन ब्राह्मण गुरु के द्वारा घर, माता तथा पुत्र को पवित्र करके किया जाता था। इस समय गुरु बालक के कान में राशि के अनुसार नाम का चयन करके बोलता, तत्पश्चात पिता इस नाम को सबको बताता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के नामों में अंतर था।

निष्क्रमण– यह अनुष्ठान जन्म से चौथे व पांचवें माह में होता था। इसमें बालक को पहली बार सूर्य चंद्र के दर्शन कराए जाते थे। इसमें गुरु द्वारा गणेश के साथ माता गौरा का पूजन विधि–विधान पूर्वक किया जाता था।[30]

अन्नप्राशन– यह जन्म के छः मास में किया जाता था। प्रायः बालक का सम माह में और बालिका का विषम माह में संस्कार होता था। इसमें बालक को खीर तथा विभिन्न पक्षियों के मांस को खिलाकर अन्न से परिचय कराया जाता यह वैदिक मंत्रों के साथ शुभ समय में सम्पन्न होता था[31] इसे कुल का वयोवद्ध या ब्राह्मण करता था।[32]

मुंडन या चूड़ाकर्म– यह संस्कार जन्म के एक, तीन, पाँच, सात, नव तथा ग्यारह वर्षों में किया जाता था। इसमें बालक के गर्भ के बालों को वैदिक मंत्रों के साथ शुभ मुहूर्त में कुल के पुरोहित द्वारा विधि–पूर्वक हटाया जाता और साथ ही यह अनुष्ठान पूर्ण होता है।

कर्ण भेद– इस संस्कार का समय जन्म के दसवें दिन से लेकर पाँचवें वर्ष तक माना जाता था, इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का स्वर्ण, रजत, लोह या रजत तथा लौह की सुई से पिता या परिवार की वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा वैदिक मंत्रों के साथ करता था। दाहिने कर्ण को ही वक्ष्यन्ति जैसे मत्रोंचार के साथ छेदा जाता है।[33]

विद्यारम्भ– इस अनुष्ठान में बालक पहली बार विद्या को जान पाता था। इसको कुल पुरोहित द्वारा शुभ समय में गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी तथा कुलदेवी के मंत्रों द्वारा पूजा अर्चना करवाकर 'ओंम् स्वस्ति नमः सिद्धाय' जैसे शब्दों को लिखवाकर इस अनुष्ठान की पूर्ति की जाती थी।[34]

उपनयन– उप+नयन अर्थात् गुरु के समीप ले जाने वाला अनुष्ठान उपनयन कहलाता है यह संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य का वसंत, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में आठवें, नवें और ग्यारहवें वर्ष में होता था। इसमें गुरु द्वारा बालक को गणेश, सरस्वती तथा सावित्री की पूजा विधि पूर्वक करवाकर बालक माता के साथ अंतिम भोजन करके, सिर के बाल छुलवा कर, पाश, उद्म्बर और विल्व वाले दण्ड के साथ कपास, ऊन एवं सन् के यज्ञोपवीत धारण करके गुरु को अपना पिता तथा गायत्री या सावित्री को अपनी माता मानकर उपनयन करता था, इसके पश्चात बालक द्विज कहलाता था।[35] और उसका गुरुकुल में नया जीवन प्रारम्भ होता जो संयम, समानता तथा एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व को बनाता है।

वेदारम्भ– यह अनुष्ठान किसी गुणज्ञ गुरु द्वारा वेदों को आरम्भ करवाकर किया जाता था। प्रायः ऋग्वेद के लिए पृथ्वी तथा अग्नि को आहूति, यर्जुर्वेद के लिए वायु एवं अंतरिक्ष को आहूति, इसी प्रकार साम एवं अथर्ववेद के लिए सूर्य एवं दिशाओं को आहूतियां दी जाती थी, और वेदों का अध्ययन प्रारम्भ करवाया जाता था।[36]

केशांत– इसमें बालक के केशों का अंत करके गुरु को दक्षिणा में गाय दान देना था। इस समय बालक के दाढ़ी मूछ तथा बालों को काटा जाता है। इसमें चूड़ाकर्म जैसे विधान होते थे।

समावर्तन– इस संस्कार के बाद बालक का ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त होता इसमें वह अंतिम स्नान करके सूर्य एवं सावित्री की पूजा शुभ मुहूर्त में विधि–विधान पूर्वक करता था। और कौषेय वस्त्रों को धारण करता था। इस तरह बालक ग्रहस्थ में प्रवेश के लिए अग्रसर होता था।

विवाह– ब्राह्मण धर्म में विवाह को एक संस्कार माना गया इस अनुष्ठान की पूर्ति वर और वधू के साथ पारम्परिक एवं सजातीय रुप से शुभलग्न, शुभ नक्षत्र तथा शुभ दिन में वेदपाठी ब्राह्मण द्वारा मंत्रों सहित संपन्न करवाया जाता और एक बड़े भोज का आयोजन होता तथा वर पक्ष के लोग अपनी सामर्थ के अनुसार दान आदि की क्रिया को करते थे और वर वधु को आशीर्वाद देकर विदा करते। ब्राह्मण धर्म में कुल आठ प्रकार के विवाहों

का उल्लेख मिलता है।[37] इसमें चार प्रशस्त (ब्राह्म, दैव, ऋषि तथा प्रजापत्य) तथा चार अप्रशस्त (गन्धर्व, असुर राक्षस तथा पैशाच) विवाहों के स्वरूपों का वर्णन किया गया। प्रथम चार को ही सामाजिक विवाह मापा गया। अन्तिम चारों विवाहों को गैर सामाजिक विवाह की श्रेणी में रखा गया जो असभ्य समाजों में प्रचलित था।

अंत्येष्टि– यह संस्कार मनुष्य के मृत्योपरान्त किया जाता है। जब मनुष्य को यह भान होता है कि, उसकी मृत्यु निकट आ गई है, तो उसे दान पुण्य आदि में लग जाना चाहिए जिससे मरने के समय ज्यादा कष्ट ना हो मृतक शरीर को दफनाना, जलाना तथा खुले में पशुओं के लिए छोड़ देने की प्रथा प्रागैतिहासिक काल से चली आ रही है, प्रायः जलाना सबसे उत्तम क्रिया मानी जाती है, इसके बाद मृतक का अनुष्ठान दशवीं और तेरहवीं के रूप में प्रारम्भ होकर एक वर्ष चक चलता था।[38] इस तरह संस्कार रूपी अनुष्ठानों का विधान ब्राह्मण अनुष्ठानों के अन्तर्गत आता है।

तप, ध्यान एवं साधना–यह एक भावात्मक अनुष्ठान है, जिसको मनुष्य द्वारा करने पर उसके क्रियाकलाप आदि में भारी परिवर्तन आता है। एक स्थान पर कहा गया, कि क्षत्रिय में यदि तेज नहो, घोड़े में यदि तेजी ना हो और साधक मे यदि तेजस्विता ना हो तो वह मिट्टी के समान माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण में तपसा वै लोकं जयन्ति,[39] ऐसे वाक्यों का उल्लेख मिलता है, अर्थात् तप के तेज से ही साधारण मानव एक विशेष व्यक्ति बनकर असंभव कार्य को संभव कर विजय पा सकता है। तैत्त्रीय ब्राह्मण में प्रजापति द्वारा सृष्टि के कल्याण के लिए तप करना पड़ा जिससे वे सृष्टि को मूल रूप में गढ़ पाये।[40] इसमें आगे कहा गया, कि 'तपसो में प्रतिपण'[41] तप मेरी प्रतिष्ठा और सम्मान है। गोपथ ब्राह्मण में कहा गया, कि 'श्रेष्ठो हे वेदस्तपसो अधिजातः'[42] तप से श्रेष्ठ ज्ञान का जन्म होता है, जो अत्यधिक श्रेष्ठ एवं परम होता है शतपथ ब्राह्मण में कहा गया, कि तप एक अग्नि हैं और वही दीक्षा।[43] गोपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है, कि जो तपता है तथा संसार से साधना एवं ध्यान के माध्यम से अलग रहता वह यश कीर्ति का अधिकारी बन जाता है।[44] अथर्ववेद में कहा गया, कि 'श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति अर्थात् श्रम और तप से ही संसार में उपस्थित दुष्ट कृतियों को मिटा कर संसार को बचाया जा सकता है।[45] इसी में आगे कहा गया, कि 'ब्रह्मचर्य एवं तप के द्वारा देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया तथा अमर बन गए तप से ही ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है।[46]

कुछ अन्य वैदिक ग्रंथों में तप की महिमा की व्याख्या करते हुए कहा गया, कि तप से ब्रह्मज्ञान और परम पद को अर्जित किया जा सकता है। आत्मज्ञान का मूल आधार तप, दम और सत्कर्म है यही नहीं तप 'ऋत' है, सत्य है इन्द्रियों से वैराग्य उत्पन्न करवाने वाला शान्ति है, अर्थात् आत्मा में शान्ति को पैदा करने वाला इसे दान और दया भी कहा गया। अतः धर्म के समस्त अंग तप है।[47] महाभारत में तप को स्वर्ग के सात द्वारों में से एक माना गया, जिससे मनुष्य परमब्रह्म को पाने के लिए निकलता है। अर्थात् परमात्मा को पाने के लिए तप रूपी द्वार से गुजरना पड़ेगा।[48] मनुस्मृति में कहा गया, कि–

यद् दुस्तरं यद् दुरायं यद् यच्य दुष्करम्।
सर्व तत् तपसा साध्यं तमोहि दुरतिकमः।[49]

अर्थात् जो दुष्कर है, दुष्प्राय है, तथा जो दुर्गम है, वह सभी संसार के कार्य तप व तपस्या से सम्भव व सरल हो जाते है, तप से सभी कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती है। इसके माध्यम से संसार की समस्त शक्तियों पर विजय प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार तप वह है जिसमें साधक अपने शरीर के साथ–साथ मन को भी तपाता है, या कायोत्सर्ग करता है। तप केवल काया का ही नहीं बल्कि किसी भी कार्य का दृढ़ संकल्प है, जिसमें साधक स्वयं को साध कर कार्य को पूरा करता तथा समाज की कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करता। तप के प्रमुख अंगों में 'ध्यान' एवं साधना' है। ध्यान का तात्पर्य किसी भी कार्य को मन, तन तथा वचन से पूर्ण करना परन्तु साधना जिससे तप रूपी दृढ़ संकल्प को पूर्ण किया जा सके। अतः तप एक ऐसा अनुष्ठान है जिससे शरीर रूपी हवनकुण्ड में आत्मा रूपी यजमान द्वारा मन के विकारों की आहूति दी जाती है।

अन्य पूजा विधान–प्रायः ब्राह्मण धर्म के प्रारम्भ में ईश्वर के प्रति आस्था प्रकट करने के लिए यज्ञ, तप तथा कुछ अन्य अनुष्ठान थे। परन्तु कालान्तर में मंदिरों मूर्तियों की स्थापना ने मनुष्य को आराधना की ओर मोड़ दिया, जिसमें नित्य और नैमित्य दोनों प्रकार की अलग–अलग पूजाएं व्रत एवं उपवास हैं। जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से दिया गया है।

1. एकादशी व्रत–जैसा की मन्दिरों के महान्तों ने इसकी चर्चा करते हुए कहा, कि यह व्रत प्रत्येक माह के कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष की एकादशी को विधि–पूर्वक धारण किया जाता है। इसमें नमक के साथ अन्न और तामस आहार वर्जित बताए गये हैं। इसे स्त्री–पुरुष सभी धारण करते है। इसमें विशेष रूप से तुलसी वृक्ष एवं विष्णु देवता की आराधना की जाती है, केले के वृक्ष पर जल देने का भी विधान है। चालव का प्रयोग एक दिन पहले से एक दिन पश्चात् तक सेवन करना वर्जित बताया गया। कार्तिक एवं जेष्ठ माह के शुक्ल पक्ष की एकादशी को बड़ी एवं श्रेष्ठ एकादशी व्रत माना जाता है। इसके पारण में साधक को पुरोहित की आवश्यकता होती है। जो वैदिक मन्त्रों के साथ पूर्ण करवाता है।

2. नवदुर्गा व्रत–इसमें प्रायः अश्वनि मास तथा चैत्र मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक नौ दिन का उपवास रखा जाता है। साधक पहले दिन से ही अन्न का त्याग करके नौ दिन तक उपवास धारण करता है। इस समय वह शिव अर्धागिनी पार्वती के नौ रूपों की पूजा करता तथा नैवैद्य से विधि पूर्वक आराधना करते हुए नौवें दिन दुर्गासप्तसदी के पाठ के साथ पुरोहित बुलाकर विधिपूर्वक हवन करवाता तथा दशवें दिन इस व्रत का पारण करता, तत्पश्चात अन्न को लेकर उपवास को समाप्त करता है।

3. शिवरात्रि व्रत–यह बसंत ऋतु में फाल्गुन माह के कृष्ण पक्ष की त्रियोदशी तिथि को मनाया जाता है, इसमें पंचगव्य, दशामृत तथा अन्य मादक पदार्थों से शिवलिंग का अभिषेक होता, बेलपत्र से पूजा की जाती थी। इसमें साधक रात्रि के चारों पहर में चार बार नैवेद्य से आराधना करता तथा प्रातः काल हवन करके इसका पारण करता, इसमें साधक रात्रि जागरण भी करता है। यह निरजला व्रत है, जिसमें वह जल को भी नहीं ग्रहण करता है।

इसी प्रकार सोलह सोमवार, चार रविवार, गुरूवार तथा तीज जैसे व्रतों का भी विधान बताया गया, जिसके माध्यम से साधक साधना के मार्ग पर अग्रसर होता था। इन व्रतों का विधान भी उपर्युक्त व्रतों की भांति है। अतः जीवन को संयम एवं साधना में बांधने के लिए अनुष्ठान अति आवश्यक है, जो मानव को न केवल ईश्वर की ओर ले जाते है। बल्कि नैतिकता और धर्म से बांधे रखते है। उसको भटकने नही देते जिससे उसके लोक और परलोक का कल्याण होता है।

निष्कर्ष–

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो गया, कि ब्राह्मण धर्म सनातन धर्म का एक अंग है, इसमें ईश्वर भक्ति को प्रकट करने के लिए जहाँ एक ओर साधन, तप एवं ध्यान के मार्ग को आश्रय दिया गया, वहीं दूसरी ओर यज्ञ, याग एवं हवन रूपी अनुष्ठान करके परमात्मा का साक्षातकार किया गया। जहाँ तक ब्राह्मण धर्म के अनुष्ठान के स्वरूपों की बात की जाए तो इसमें हवन, बलि, संस्कार तथा अन्य पूजा विधानों को शामिल किया गया, जिसके द्वारा साधक ईश्वर के प्रति अपनी आस्था प्रकट करता था। वास्तव में इस धर्म में व्यक्ति का प्रमुख मार्ग अनुष्ठानों को ही माना गया, क्योंकि मंदिर निर्माण के पश्चात मूर्ति पूजा इसका प्रधान कर्मकाण्ड बना, अतः साधक मंदिरों के देवताओं का प्राण प्रतिष्ठा रूपी अनुष्ठान करके उसे मानव की भाँति पूजते थे। उन्हें अपना ईष्टदेव मानकर विभिन्न प्रकार की दैनिक सामग्रियों के माध्यम से उनके प्रति आस्था प्रकट करते थे। इस तरह ब्राह्मण धर्म के अनुष्ठान के स्वरूप को यदि भौतिकवादी कहा जाय तो ज्यादा समीचीन होगा।

सन्दर्भ –

[1] *शतपथब्राह्मण,* सं0, सत्यप्रकाश सरस्वती, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1946, पृ0 1/7/15
[2] *अथर्ववेद,* सं0, जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, 1929, पृ0 9/10/14
[3] *ऋग्वेद,* सं0, श्रीपाद दमोदर सातवलेकर, स्वध्याय मण्डल पारड़ी, मुम्बई, 1958, पृ0 9/10/14
[4] *श्रीमद्भगवतगीता,* सं0, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वध्याय मण्डल, आनन्दाश्रम, पारड़ी, बुम्बई 1950, पृ0 3/90/16
[5] उपर्युक्त, पृ0 3/9
[6] उपाध्याय, बलदेव, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* शारदा माँ प्रकाशन, काशी, 1958, पृ0 7
[7] *अपस्तम्भसूत्र,* सं0, उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1966, पृ0 37/48
[8] *छन्दोग्योपनिषद्,* सं0, स्वामी स्वंय प्रकाश गिरि, दक्षिणा मूर्ति मठ प्रकाशन, वाराणसी 1941, पृ0 5/24
[9] उपाध्याय, बलदेव, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* शारदा माँ प्रकाशन, काशी, 1958, पृ0 8
[10] उपर्युक्त, पृ0 9

[11]उपर्युक्त, पृ0 91–10
[12]*ऋग्वेद,* सं0, श्रीपाद दमोदर सातवलेकर, स्वध्याय मण्डल पारड़ी, मुम्बई, 1958, पृ0 6/48/1
[13]उपाध्याय, बलदेव, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* शारदा माँ प्रकाशन, काशी, 1958, पृ0 11
[14]*ताण्ड्य ब्राह्मण,* सं0, सत्यप्रकाश सरस्वती, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 1949, पृ0 18/7/1, 8/6/4
[15]उपर्युक्त, पृ0 18/8/1
[16]उपाध्याय, बलदेव, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* शारदा माँ प्रकाशन, काशी, 1958, पृ0 11–12
[17]उपर्युक्त, पृ0 12–13
[18]*तैत्त्रीय अरण्यक,* सं0, आनन्दसागरसूरि, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना, 1953, पृ0 1/5/11
[19]*सिद्धान्त कौमुदी,* सं0, आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षपवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959, पृ0 4/2/24
[20]*निरूक्त,* सं0, ज्ञानप्रकाश शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1981, पृ07/5
[21]उपर्युक्त, पृ0 7/10
[22]उपर्युक्त, पृ0 7/11
[23]*तैत्त्रीय संहित्ता,* सं0, आनन्दसागरसूरि, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना,1953, पृ0 3/10/5
[24]*भगवतपुराण,* सं0, वी0 एल0 पन्निकर, मनिकचन्द्र दिगम्बर जैनग्रन्थमाला, बम्बई, 1920, पृ0 10/84/39
[25]*मनुस्मृति,* सं0, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पुस्तक मंन्दिर, मथुरा, 1962, पृ0 6/35
[26]उपर्युक्त, पृ0 3/46
[27]*याज्ञवल्क्यस्मृति,* सं0, श्रीराम शर्मा, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1967, पृ0 1/79
[28]काणे, पी0 वी0, *धर्मशास्त्र का इतिहास,* भाग एक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1980, पृ0 6/187–88
[29]पाण्डे, राजबली, *हिन्दू संस्कार,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1995, पृ0 2/94
[30]उपर्युक्त, पृ0 5/111
[31]उपर्युक्त, पृ0 6/115
[32]काणे, पी0 वी0, *धर्मशास्त्र का इतिहास,* भाग एक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1980, पृ0 6/202
[33]पाण्डे, राजबली, *हिन्दू संस्कार,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1995, पृ0 6/132
[34]उपर्युक्त, पृ0 6/133
[35]काणे, पी0 वी0, *धर्मशास्त्र का इतिहास,* भाग एक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1980, पृ0 7/221
[36]*मनुस्मृति,* सं0, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पुस्तक मंन्दिर, मथुरा, 1962, पृ0 2/74
[37]काणे, पी0 वी0, *धर्मशास्त्र का इतिहास,* भाग एक, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1980, पृ0 9/272–73
[38]पाण्डे, राजबली, *हिन्दू संस्कार,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1995, पृ0 10/311
[39]*शतपथब्राह्मण,* सं0, सत्यप्रकाश सरस्वती, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 1946, पृ0 3/4/4/27
[40]*तैत्त्रीयब्राह्मण,* सं0, नारायण शास्त्री, आनन्दाश्रम, पूना, 1966, पृ02/2/9
[41]उपर्युक्त, पृ0 3/7/70
[42]*गोपथब्राह्मण,* सं0, सत्यप्रकाश सरस्वती, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 1947, पृ0 1/1/9
[43]*शतपथब्राह्मण,* सं0, सत्यप्रकाश सरस्वती, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 1946, पृ0 3/4/3/3
[44]*गोपथब्राह्मण,* सं0, सत्यप्रकाश सरस्वती, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 1947, पृ0 2/5/14
[45]*अथर्ववेद,* सं0, जयदेव शर्मा, आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, 1929, पृ011/5/4
[46]उपर्युक्त, पृ0 11/5/19
[47]सरस, श्रीचन्द्र सुरना, *जैन धर्म में तप स्वरूप और विश्लेषण,* मरूधर केशरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर, जयपुर, 1972, पृ0 42–43
[48]*महाभारत आदिपर्व,* सं0, भक्तवेदान्त स्वामी, आदि साहित्य मण्डल, अजमेर, 1947, पृ0 9/22
[49]*मनुस्मृति,* सं0, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पुस्तक मंन्दिर, मथुरा, 1962, पृ0 11/229

डॉ. अजीत सिंह
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ